Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद प्रकाश

विशेषांक

'वेदप्रकाश' के लघु विशेषांक के रूप में प्रस्तुत है पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी की कृति 'शंकर, रामानुज और दयानन्द'।

पण्डित जी ने इसमें इन तीन महान् दार्शनिकों के मत सूक्ष्म रूप में रख दिए हैं।

शंकर की फिलासफी का मूल मन्त्र है 'एकं ब्रह्म, द्वितीयं नास्ति'। केवल एक सत्ता है अर्थात् ब्रह्म। परन्तु रामानुज इसका विरोध करते हैं उन का मत है—विशिष्टाद्वैत अर्थात् अद्वैतवाद तो है परन्तु विशेषता के साथ। स्वामी दयानन्द न तो शंकर के समान अद्वैतवादी थे न रामानुज के समान विशिष्टाद्वैतवादी, वे थे पूरे द्वैतवादी या कहना चाहिए 'त्रैतवादी'। वह तीन वस्तुओं का अलग और अनादि अस्तित्व स्वीकार करते हैं अर्थात् ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति का।

विवेकी जन इन पर विचार करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोध-कथा

समर्पित व्यक्तित्व

कुमारिल भट्ट अपने समय के बड़े वैदिक विद्वान् थे। जब उन्होंने शिक्षा पूर्ण की तब नव स्नातक भट्टाचार्य का विवाह कर दिया गया। उन्हीं दिनों उन्हें वेद-भाष्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। कुछ ही दिन बीते होंगे कि आचार्य जी की माता जी का स्वर्गवास हो गया। युवा कुमारिल भट्टाचार्य ने हाथ जोड़कर पत्नी से अनुरोध किया—"मैं वेदों का अविकल भाष्य कर रहा हूँ। अभी तक ब्रह्मस्थ हो ब्रह्म वेदज्ञान का गुरु गम्भीर कार्य कर रहा हूँ. जब तक माताश्री थीं, वह शरीर-रक्षा का कार्य करती थीं, अब तुम से विनती है कि वेदभाष्य के पुनीत कार्य में तुम मेरी सहायता करो।"

पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा—"तथास्तु। भगवन्, ऐसा ही होगा।" ६८ वर्ष की आयु में वेदभाष्य का कार्य पूर्ण हो गया। वेदभाष्य पूर्ण होने से आचार्य प्रसन्न थे। उस दिन पूर्णिमा की रात थी। कुटिया के प्रांगण में आचार्य सो रहे थे। अचानक रात के समय उनकी नींद खुली। समीप ही एक काष्ठशय्या पर आचार्य की तपस्विनी पत्नी सो रही थीं। आचार्य के उठते ही आहट पाकर तपस्विनी पत्नी की नींद भी खुल गई। पति को अपने चेहरे की ओर देखते देखकर वह बोलीं—'अब जीवन के अन्तिम चरण में हम अपना व्रत क्यों तोड़ें? आइए, आचार्य-प्रवर, अभी तक आप ने वेदभाष्य में अपना जीवन समर्पित किया है, अब जीवन के बचे क्षण वेदप्रचार के लिए अर्पित कर दें।"

आचार्य बोले—"तथास्तु, ऐसा ही होगा। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्।" उन्होंने तपस्विनी पत्नी को प्रणाम किया और दोनों पति-पत्नी जीवन के शेष क्षण वेदप्रचार के लिए अर्पित करने के लिए गृहत्याग कर निकल पड़े।

स्मरण रहे कि यही वैदिक विद्वान् पं० कुमारिल भट्टाचार्य आद्य शंकराचार्य के प्रेरणास्रोत थे।

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४५ अंक १ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये अगस्त १९९५

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

शंकर, रामानुज और दयानन्द

लेखक : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

[१]

शंकर

भारतवर्ष अपने दर्शन-शास्त्र के लिए प्रसिद्ध है। इसके षट्शास्त्र जगद् विख्यात हैं। इन शास्त्रों को यह रूप देने से पूर्व भारतवासियों ने कितनी उन्नति कर ली होगी, यह बात केवल इन शास्त्रों के अध्ययन से जानी जा सकती है। परन्तु मध्यकालीन भारतीय दर्शन गगन को देदीप्यमान करने वाले दो अद्भुत तारे शंकर और रामानुज थे। आजकल का धार्मिक हिन्दू जगद् एक अर्थ में इन दो महानुभावों के प्रभाव-क्षेत्रों में बंटा हुआ है।

शंकर एक महान् पुरुष था। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम उत्पन्न होते हैं। एक युग में कई शंकर तो हो ही नहीं सकते। कई युगों में भी एक शंकर उत्पन्न होना दुर्लभ है। शांकर मत के विरोधी पहले भी थे और अब भी हैं परन्तु कोई पुरुष जिसको दर्शन शास्त्र से कुछ भी परिचय है, शंकर की अद्भुत और अनुपम शक्ति का लोहा माने बिना नहीं रह सकता।

शंकर की फिलासफी का मूल मन्त्र यह है "**एकं ब्रह्म, द्वितीयं नास्ति।**" केवल एक ही सत्ता है अर्थात् ब्रह्म। इससे इतर कोई दूसरी सत्ता है ही नहीं। ब्रह्म का निरूपण उपनिषत् के शब्दों में यह है। "**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म।**" ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है और अनन्त है। ब्रह्म को वाणी से वर्णन नहीं कर सकते। ब्रह्म गुण और गुणी के द्वन्द्वों से रहित है अर्थात् ब्रह्म में किसी गुण का समावेश नहीं। वह न बुरा है न भला। न काला न पीला। ब्रह्म कर्त्ता और क्रिया के द्वन्द्वों से भी मुक्त है अर्थात् वह कुछ करता नहीं। ब्रह्म ज्ञाता और ज्ञान के द्वन्द्वों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से भी परे है अर्थात् यह नहीं कह सकते कि ब्रह्म अमुक वस्तु को जानता है। ब्रह्म केवल ज्ञान है ज्ञाता नहीं है।

यदि ब्रह्म ज्ञाता होता तो उसके लिए ज्ञेय भी चाहिये था। जब जानने की वस्तु न हो, जानने वाला हो ही नहीं सकता। जब मैं कहता हूं कि मैं जानता हूं तो प्रश्न होता है कि तुम क्या जानते हो ? जिस प्रकार देखने वाले के लिए वह वस्तु भी चाहिए जिसे देखा जा सके। उसी प्रकार जानने वाले के लिए भी वह वस्तु अवश्य होनी चाहिए जिससे उसको ज्ञाता कह सकें। बिना ज्ञेय के ज्ञाता नहीं होता। यदि ब्रह्म ज्ञाता हुआ तो उसका ज्ञेय भी होगा। ज्ञेय हुआ तो दो वस्तु हो गई ज्ञान और ज्ञेय। फिर अद्वैत कहां रहा? इसलिए शंकर स्वामी कहते हैं कि ब्रह्म ''ज्ञान'' है ज्ञाता नहीं।

यदि ब्रह्म कर्त्ता होता तो वह कोई क्रिया अवश्य करता। क्रिया का फल किसी और वस्तु पर पड़ता। क्योंकि जिस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय होते हैं उसी प्रकार कर्त्ता, कर्म और क्रिया भी होते हैं जब कर्म ही नहीं तो क्रिया क्या? और क्रिया नहीं तो कर्त्ता कैसे कह सकते हैं ? यदि क्रिया और कर्म मानो तो अद्वैत नहीं रहता। इसलिए ब्रह्म कर्त्ता नहीं।

यदि ब्रह्म में गुण मानो तो गुण और गुणी के सम्बन्ध को स्थापित करना पड़ेगा। उन गुणों का कारण समझने के लिए ब्रह्म के सिवाय अन्य वस्तुएं भी होनी चाहिए। अतः फिर वही कठिनता रहेगी अर्थात् अद्वैत न रहेगा। अतः शंकर स्वामी का मत है कि ब्रह्म एक सत्ता मात्र है। उसको वैशेषिक के द्रव्य, गुण, कर्म आदि छः पदार्थों की कोटि में नहीं ला सकते। तो क्या ब्रह्म के सिवाय कोई और भी सत्ता है ? कदापि नहीं। उपनिषत् कहती है **''नेह नानास्ति किंचन।''** ''यहाँ कुछ भी बहुतायत नहीं है।'' जो कुछ है वह सब एक ही है।

फिर जो देखते हैं वह क्या है ? हम को तो एक ब्रह्म के सिवाय अनेक पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सूर्य है, चांद है, पृथ्वी है, वृक्ष है, पर्वत हैं, नदियाँ हैं। हमारा शरीर है। हमारे भाई का शरीर है। असंख्य मनुष्यों के शरीर हैं। फिर इनसे आगे चलकर करोड़ों पशु-पक्षी और कीट-पतंग हैं। इन सबके होते हुए कैसे कहा जाय कि केवल ब्रह्म ही है। अन्य सब नहीं।

शंकर स्वामी उसका उत्तर देते हैं कि ''यह सब माया है। हम को अविद्या-वश कई वस्तुएं प्रतीत होती हैं।'' ''प्रतीत होने'' और 'होने' में बड़ा भेद है। यह तो नियम है नहीं कि जो प्रतीत हो वह अवश्य हो ही। सूर्य पूर्व की ओर से निकलता प्रतीत होता है। परन्तु खगोल शास्त्र विशारद कहते हैं कि वस्तुतः हम सूर्य की ओर निकलते हैं, सूर्य नहीं निकलता। रेल में बैठने वाले को सड़क के वृक्ष चलते प्रतीत होते हैं। वस्तुतः वह चलते नहीं पानी में लकड़ी डाल दो। तिरछी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रतीत होगी । यद्यपि वह सीधी है और पानी से निकालने पर सीधी ही प्रतीत होती है। इस प्रकार यदि एक बार मान लिया गया कि वस्तुएं जैसी प्रतीत होती हैं वैसी नहीं,

And things are not what they seem.

तो फिर केवल इसलिए कि संसार दीखता है हम इसके अस्तित्व को नहीं मान सकते । हाँ यह कह सकते हैं कि यह सब संसार व्यवहार दशा में है । पारमार्थिक दशा में नहीं । यद्यपि सूर्य निकलता नहीं फिर भी व्यवहार की भाषा में यही कहते हैं कि सूर्य निकल आया । हम रेल में बैठकर कानपुर पहुंचते हैं वास्तव में हम आते हैं न कि कानपुर । फिर भी व्यावहारिक भाषा में कहते हैं कि कानपुर आ गया । इसी प्रकार यद्यपि संसार का बहुत्व केवल व्यावहारिक है । तथापि वास्तव में यह कुछ है नहीं ।

इसके लिए दो तीन उदाहरण दिये जाते हैं :

(१) जैसे अन्धेरे में लोग रस्सी को सांप समझ कर डर जाते हैं, और उजाले में रस्सी को देख कर फिर अपनी मूर्खता पर हंसते हैं। उसी प्रकार इस संसार को देखकर हम समझते हैं कि यह है । वस्तुतः यह नहीं है ।

(२) जैसे स्वप्न में हम भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों को देखते हैं । वास्तव में वह पदार्थ नहीं होते । इसी प्रकार जगत् के नाना पदार्थों की प्रतीति उसी समय तक होती है जब तक हम स्वप्न देख रहे हैं। कमरे में अकेला चारपाई पर पड़ा हुआ मनुष्य स्वप्न में अपने को असंख्यों पुरुषों की भीड़ में व्याख्यान देता हुआ देख सकता है । परन्तु जब आँख खुली तो अकेला ही अकेला । वे सब असंख्यों पुरुष विलीन हो गये, क्यों ? इसलिए कि वह वास्तव में न थे । केवल स्वप्न दशा में थे। इसी प्रकार व्यवहार दशा में तो सूर्य, चन्द्र आदि सब हैं परन्तु जब ज्ञान हो गया तो केवल एक ब्रह्म है अन्य कुछ नहीं ।

(३) जैसे बाजीगर तमाशे के लिए सैकड़ों रुपये, मेवे आदि दिखा देता है परन्तु वह कुछ होते नहीं, इसी प्रकार संसार है कुछ नहीं। केवल हमने बाजीगर के समान यह सब अपना पराया आदि नानात्व (बहुतायत) रच रक्खा है । ज्यों ही यह खेल समाप्त होगा हम ही हम रह जायेंगे ।

शंकर के मत में यह नानात्व की प्रतीति ही बन्ध है । जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला मनुष्य कल्पित वस्तुओं के भय से भयभीत होता है और उसका दुःख उसी समय तक है जब तक स्वप्न है । इसी प्रकार मनुष्य बन्धन में उसी समय तक है जब तक अपनी ''सत्ता'' और अपने से इतर की ''असत्ता'' का ज्ञान नहीं हो जाता । जब समझ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में आ गया कि रस्सी है साँप नहीं; तो भय किस बात का ? और जब ज्ञान हो गया कि मैं ब्रह्म ही ब्रह्म हूं, और मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं तो फिर शोक मोह या तृष्णा किस बात की ?

इसलिए शंकर के मत में मोक्ष का एक मात्र साधन ज्ञान है।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।

अर्थात् ''बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं ।'' ऐसा तो सभी मानते हैं। परन्तु शंकर स्वामी कहते हैं कि **''ज्ञानेनैव मुक्तिः''** अर्थात् ज्ञान मात्र से ही मुक्ति हो जाती है । अतः शंकर के मत में कर्म की आवश्यकता नहीं । शंकर ज्ञान को विद्या और कर्म को अविद्या कहते हैं । मनुष्य कर्म क्यों करता है ? उसे क्रिया में फंसने की क्यों आवश्यकता होती है ? केवल इसलिए कि वह अपने स्वरूप को नहीं समझता । स्वप्न देखने वाला अपने स्वप्न में प्रतीत हुए शत्रु से लड़ता, पुत्र को प्यार करता, और इसी प्रकार की सैकड़ों क्रियाएँ करता है । यदि उसे ज्ञान हो जाये कि मेरे सिवाय कुछ नहीं वह किससे लड़े ? किसका मोह करे ? किसके लिए क्रिया करे ? इसी प्रकार जब जीव को ज्ञान हो गया कि मैं ही वह **''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म''** हूं तो वह फिर कर्म किस लिए करेगा ?

फिर शंकर के मत में धर्म, पूजा, पाठ, सदाचार आदि क्या वस्तु हैं ? कुछ नहीं । शंकर स्वामी कहते हैं कि यह सब उसी समय तक हैं जब तक मनुष्य अविद्या में फंसा हुआ है । सदाचार, दुराचार, सच, झूठ, धर्म, अधर्म यह सब द्वन्द्व हैं और नानात्व के सूचक हैं । ज्ञान होते ही संसार का नानात्व (बहुतायत) नष्ट हो जायेगा और हम को मालूम होगा कि—

''ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था ।''

हाँ व्यवहार दशा में मन बहलाने के लिए या शान्ति प्राप्त करने के लिए हम ईश्वर की उपासना कर सकते हैं । परन्तु यह उपास्य, उपासक और उपासना भी द्वन्द्व से मुक्त नहीं । इसलिए जिसको हमने अपना ईश्वर या उपास्य देव समझ रक्खा है वह है क्या? वह भी तो माया ही है । वास्तविक नहीं । जिस प्रकार सूर्य, तारे और संसार की अन्य वस्तुएं केवल प्रतीत होती हैं अतः असत्य हैं उनका पारमार्थिक अस्तित्व नहीं, इसी प्रकार जिसको हम अपने से भिन्न अपना उपास्य देव या ईश्वर समझते हैं वह भी तो माया या अविद्या के ही कारण है, जब ज्ञान हो गया और समझ में आ गया कि **''एकं ब्रह्म, द्वितीयं नास्ति''** तो फिर यह भी समझ में आ सकता है कि **''अहं ब्रह्मास्मि नेतरः''** अर्थात् मैं ब्रह्म ही हूं इससे इतर कुछ नहीं, फिर मैं किसकी उपासना करूँगा ? कौन मेरा इष्टदेव होगा ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रकार शंकर के मत में यज्ञ आदि अनुष्ठान, दान, पुण्य आदि शुभ कर्म, उपासना आदि सब अविद्या या माया के खिलौने हैं। इनसे कोई वास्तविक लाभ नहीं होता । हां व्यवहार दशा में सन्तोष हो जाता है । वास्तविक लाभ तो केवल उसी ज्ञान की प्राप्ति से होता है। जिससे संसार का नानात्व मिटकर केवल **"शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव"** का अनुभव हो जाय ।

यह है शंकर का दार्शनिक मत ! इसको अद्वैतवाद कहते हैं क्योंकि जितना द्वित्व समझ में आ सकता था उस सभी का निषेध किया गया है ।

[२]

रामानुज

रामानुज ने शंकर का विरोध किया । उनकी आत्मा को शंकर के विचारों से शान्ति नहीं मिली । उनकी समझ में नहीं आया कि 'माया' मानने से शंकर का अद्वैतवाद कैसे सिद्ध हो जाता है । शंकर स्वामी कहते हैं कि केवल ब्रह्म ही सत्य है । ब्रह्म को छोड़कर और बहुत सी चीजें जो प्रतीत होती हैं वे माया के कारण हैं । रामानुजाचार्य विचार करना चाहते हैं कि यह माया क्या वस्तु है जिसके कारण बिना अस्तित्व रखते हुए भी यह इतना जगत् प्रतीत होता है । श्री शंकराचार्य जी माया को न ब्रह्म के समान सत् मानते हैं, न खरगोश के सींग के समान असत्। जब सत् भी नहीं और असत् भी नहीं तो है क्या ? यदि माया कुछ वस्तु है तो शंकर का अद्वैतवाद नहीं रहा । क्योंकि दो वस्तुएं हो गई एक ब्रह्म और दूसरी माया । यदि कहो कि असत् है अर्थात् कुछ वस्तु नहीं तो वह बहुत्व का भ्रम कैसे उत्पन्न कर देती है ? यदि कहो कि न सत् है न असत् तो ऐसा कोई उदाहरण ही नहीं मिलता । या तो कोई चीज है या नहीं है । यह कैसे हो सकता कि "हो भी नहीं" और न हो भी नहीं । खरगोश के सींग नहीं होते इसलिए शशशृंग (खरगोश के सींग) को असत् की कोटि में रखते हैं बैल के होते हैं इसलिए इनको असत् की कोटि में न रखकर सत् की कोटि में रक्खेंगे, जिसका 'अस्तित्व' नहीं उसका नास्तित्व' होगा, जिसका 'नास्तित्व' नहीं उसका 'अस्तित्व' अवश्य होगा । श्री रामानुजाचार्य ने 'माया' के विरुद्ध बहुत युक्ति-युक्त दोषों का उल्लेख किया है, और यदि 'माया' की कल्पना नहीं की जाती तो शंकर का मत ठहरता ही नहीं । यहां हम उन दोषों को संक्षेप से दिखलाते हैं ।

(१) आश्रयानुपपत्ति दोष

अर्थात् माया किस के आश्रय ठहरेगी ? माया कोई स्वयं सिद्ध

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और स्वयमाश्रित वस्तु नहीं, जो अपने पैरों खड़ी हो सके । स्वप्न सदा स्वप्न देखने वाले के आश्रित होता है । यदि स्वप्न देखने वाला कोई नहीं तो स्वप्न भी कोई नहीं । मैं स्वप्न में देखता हूं कि हाथी पर चढ़ा हूं । "यह हाथी पर चढ़ने" का स्वप्न किसके आश्रित हुआ? मेरे, क्योंकि मैंने स्वप्न देखा, और मैंने स्वप्न क्यों देखा ? इसलिए कि मेरे मस्तिष्क में विकार है, मुझे नींद नहीं आई और जागृत अवस्था के पड़े हुए संस्कार घोर निद्रा के अभाव में मेरे मन के आगे नृत्य करने लगे । यदि मैं न होता तो स्वप्न भी न होता और यदि मैं होता परन्तु मेरे मस्तिष्क में विकार न होता तो भी मुझ को स्वप्न न होता, इसलिए स्वप्न के आश्रय के लिए एक ऐसी सत्ता चाहिये जो अल्प, अपूर्ण और विकार-प्रभावित हो । श्री शंकर जी मानते हैं कि ब्रह्म पूर्ण है, अनन्त है, ज्ञान है । इसलिए ब्रह्म तो 'माया' का आश्रय हो ही नहीं सकता। रहा 'जीव' । शंकर जी जीव की अलग़ सत्ता नहीं मानते । उनके मत में तो माया से प्रभावित ब्रह्म ही जीव हो जाता है और पूर्ण ज्ञानी होते ही जीव अपने को ब्रह्म समझने लगता है । इसलिए जब 'माया' से पहले जीव कोई चीज ही न था तो माया को आश्रय कैसे दे सकता है । इसलिए रामानुजाचार्य कहते हैं कि शंकर के मत में पहला दोष है, 'आश्रयानुपपत्ति दोष" । अर्थात् 'मायावाद' की कल्पना करने से पूर्व शंकर जी ने यह नहीं सोचा कि 'माया' को मानने से उसके आश्रय को कहां मानेंगे और जब तक आश्रय न मानें उस समय तक माया की कल्पना ही कैसे कर सकेंगे ।

(२) तिरोधानानुपपत्ति दोष

अर्थात् 'माया' ब्रह्म को छिपा कैसे सकती है ? यदि ब्रह्म ही ब्रह्म है और ब्रह्म 'ज्ञान' है तो इस ज्ञान का तिरोधान कैसे हुआ ? जब तक प्रकाश न छिपे अन्धेरा कैसे हो ? दीपक जल रहा है । समस्त स्थान में प्रकाश हो रहा है । या तो दीपक के ऊपर टोकरी रख दो या दीपक के सामने कोई दीवार खड़ी कर दो, तो प्रकाश रुक जायेगा और अन्धेरा हो जायेगा । अन्धेरे में सांप को रस्सी समझ सकते हैं और रस्सी को सांप परन्तु यदि प्रकाश ही प्रकाश है । प्रकाश से इतर कोई वस्तु ही नहीं । न दीवार न टोकरी, तो अन्धेरा कैसे होगा । दीपक के तले अन्धेरा तभी होता है जब दीपक का 'प्रकाश शून्य' तला दीपक की 'लौ' को रोक लेता है और दीपक के ऊपर अन्धेरा तभी होता है जब बिजली के बल्ब के ऊपर प्रकाश शून्य खोल चढ़ाते हैं । जब तक ब्रह्म के ज्ञान का तिरोधान नहीं होता स्वप्न, अज्ञान, अविद्या, भ्रम या माया का प्रश्न ही नहीं उठता । और ब्रह्म का तिरोधान हो कैसे ? या तो ब्रह्म को कोई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसी वस्तु मानो जो ढंप सकती है और 'माया' को ऐसी वस्तु मानो जो ढांप सकती है । यदि ऐसा मानोगे तो ढांपने वाली और ढंपने वाली दो वस्तुएं हो जायेंगी और 'अद्वैतवाद' का किला धम से आ गिरेगा । यदि मैं कोई वस्तु नहीं किन्तु प्रतीत ही होती है तो वह ब्रह्म के ज्ञान को ढांपने के लिए कभी पर्याप्त नहीं हो सकती। कल्पित दीवार या कल्पित टोकरी से दीपक के प्रकाश को ढंक नहीं सकते । और जब तक प्रकाश ढंकता नहीं, अन्धेरा हो ही नहीं सकता। इसलिए श्री रामानुजाचार्य जी कहते हैं कि मायावाद का दूसरा दोष है **"तिरोधानानुपपत्ति"** ।

(३) स्वरूपानुपपत्ति दोष

तीसरा दोष है स्वरूप-अनुपपत्ति दोष । अर्थात् शंकर ने 'माया' को मान तो लिया । परन्तु वह उसके स्वरूप का निश्चय नहीं कर सकते। कोई पूछता है कि "स्वामी जी की माया सत् है ? कहते हैं "नहीं।" "क्या असत् है ?" कहते हैं "नहीं है" केवल 'नहीं से तो काम नहीं चलता । कुछ बतलाइये तो सही कि है क्या ? यदि कहो कि 'नानात्व' अर्थात् "संसार में बहुत सी वस्तुएं हैं ।" इस भ्रम को उत्पन्न करने वाली चीज माया है तो वह कोई चीज हुई ? फिर अद्वैत कैसा? इतनी बात मानने से भी तो प्रश्न उठेगा कि यह माया ब्रह्म में भ्रम कैसे उत्पन्न कर देती है ? "ज्ञानस्वरूप" ब्रह्म कैसे समझने लगता है कि मैं जीव हूं, अल्प हूं, मेरे नाक हैं, कान हैं इत्यादि ।

(४) अनिवर्चनीयत्वानुपपत्ति दोष

अर्थात् शंकर स्वामी 'माया' को अनिवर्चनीय मानते हैं अर्थात् न वह सत् है न असत् । अर्थात् है भी नहीं और नहीं भी नहीं । यह कैसे हो सकता है ? ज्ञान या तो सत् का होगा या असत् का । यदि ऐसी चीजों का भी ज्ञान मानोगे जो है भी नहीं । और नहीं भी नहीं तो ज्ञान की कोई व्यवस्था नहीं रहेगी । 'अनिवर्चनीयत्व' एक निरर्थक शब्द है जिसका यहां पर कोई अर्थ नहीं ठहरता ।

(५) प्रमाणानुपपत्ति दोष

अर्थात् माया के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता । जो न सत् है न असत् उसके लिए प्रमाण ही क्या । उसकी तो कल्पना ही अकारण है और ऐसी कल्पना के ऊपर किसी दर्शन-शास्त्र की स्थापना करना उड़ते हुए रेत के ऊपर महल बनाना है ।

(६) निवर्त्तकानुपपत्ति दोष

अर्थात् यदि यह मान भी लिया कि 'माया' ही बन्धन है । माया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही रोग है जिसकी निवृत्ति करनी है । तो यह रोग निवृत्त कैसे होगा? इसका निवर्त्तक क्या चीज है ? ब्रह्म को तो शंकर स्वामी निर्गुण और निष्क्रिय मानते हैं । वह तो निर्विशेष है । इस प्रकार का ब्रह्म माया को कैसे दूर करेगा ? और जब तक माया दूर न हो मोक्ष कैसा ? विचित्र बात यह है कि बन्ध और मोक्ष को तो शंकर भी मानते हैं । इससे तो इनको इन्कार ही नहीं

(७) निवृत्त्यनुपपत्ति दोष

अर्थात् निवृत्ति (बन्ध-नाश) की भी तो उत्पत्ति नहीं है । बन्ध कल्पित तो है नहीं । बन्ध वास्तविक है । हम सब को उसकी अनुभूति होती है । बन्ध से बचने के लिए ही तो मोक्ष की इच्छा करते हैं 'माया' के मानने से यह भी युक्ति-संगत नहीं ठहरती । यदि बन्ध वास्तविक नहीं तो मोक्ष भी वास्तविक न होगा ।

श्री रामानुजाचार्य कहते हैं कि 'माया' शब्द तो वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर आया है परन्तु उस अर्थ में नहीं जिसमें शंकर लेते हैं । 'मायावाद' तो शंकर की अपनी ही कल्पना है । श्री रामानुज जी कहते हैं।

(१) मायाशब्दस्यानिर्वचनीयवाचित्वं न दृष्टमिति ।

अर्थात् माया का अर्थ अनिर्वचनीय नहीं है ।

(२) मायाशब्दस्य मिथ्यापर्यायत्वेनानिर्वचनीयत्वमिति चेत् तदपि नास्ति ।

माया शब्द का अर्थ 'मिथ्या' भी नहीं है ।

(३) नहि सर्वत्र मायाशब्दो मिथ्याविषयः ।

माया से हर स्थान पर मिथ्या का अर्थ नहीं लिया जाता ।

असुरराक्षसशस्त्रादिषु सत्येष्वेव मायाशब्दप्रयोगात् । यथोक्तम्।

तेन मायासहस्त्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना बालस्य रक्षता देहमेकैकांशेन सूदितम् ॥ (विष्णुपुराण १।१९।२०)

अतो माया शब्दो विचित्रार्थसर्गकराभिधायी ।

यहां विचित्र अर्थ उत्पन्न करने वाली चीज को माया कहा है।

प्रकृतेश्च मायाशब्दाभिधानं विचित्रार्थसर्गकरत्वादेव ।

अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः । (श्वेताश्वर ४।९)

यहां प्रकृति को माया इसलिए कहा है कि विचित्र अर्थ उत्पन्न करती है ।

इति माया-शब्दवाच्यायाः प्रकृतेर्विचित्रार्थसर्गकरत्वं दर्शयति। परमपुरुषस्य च तद्वत्तामात्रेण मायित्वमुच्यते नाज्ञत्वेन । जीवस्यैव हि मायया निरोधः श्रूयते तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः।

(श्वेता॰ ४।९ इति)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परम पुरुष को मायी इसीलिए नहीं कहते कि वह अज्ञ है किन्तु इसीलिए कि विचित्र अर्थ उत्पन्न करता है ।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।

(गौ० १।१६)

इति च । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते (बृ० २।५।१९) इत्यत्रापि विचित्राः शक्तयोऽभिधीयन्ते । अतएव हि भूरि त्वष्टेह राजतीत्युच्यते । नहि मिथ्याभूतः कश्चिद्विराजते । मम माया दुरत्यया (गी० ७।१४) इत्यत्रापि गुणमयीति वचनात्सैव त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरुच्यते इति न श्रुतिभिः सदसदनिर्वचनीयाऽज्ञानप्रतिपादनम्।

इन प्रमाणों में भी माया का अर्थ है । विचित्र शक्ति न कि मिथ्यात्व । गीता में 'माया' का अर्थ है त्रिगुणात्मक प्रकृति न कि अनिवर्चनीय अज्ञान ।

रामानुज का मत है विशिष्टाद्वैत । शंकर का मत है अद्वैत । रामानुज जी अपने को अद्वैतवादी कहते हैं परन्तु उसमें विशिष्ट शब्द और मिलाते हैं अर्थात् अद्वैतवाद तो है परन्तु विशेषता के साथ । यह विशेषता क्या है ?

रामानुजाचार्य ने अपने मत का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

(१) कार्यावस्थः कारणावस्थश्च स्थूलसूक्ष्मचिदचिद्वस्तु-शरीरः परमपुरुषः ।

(२) सूक्ष्मचिदचिद्वस्तु शरीरं ब्रह्मैव कारणम् ।

(३) ब्रह्मोपादानत्वेऽपि संघातस्योपादानत्वे चिदचितो ब्रह्मणश्च स्वभावासङ्करोऽप्युपपन्नतरः ।

(४) यथा शुक्लरक्तकृष्णतन्तुसंघातोपादानत्वेऽपि चित्र-पटस्य तत् तत् तन्तुप्रदेश एवं शौक्लादिसम्बन्धः। इति कार्यावस्थाया-मपि न सर्वत्र संकरः तथा चिदचिदीश्वरसंघातोपादानत्वेऽपि जगतः कार्यावस्थायामपि भोक्तृत्वभोग्यत्वनियन्तृत्वाद्यसङ्करः।

(५) तन्तूनां पृथक् स्थितियोग्यानामेव पुरुषेच्छया कदाचित् संहतानां कारणत्वं कार्यत्वं च । इह तु सर्वावस्थावस्थयोः परमपुरुषशरीरत्वेन चिदचितोस्तत् प्रकारतयैव पदार्थत्वात् तत्प्रकारः परमपुरुषः । सर्वदा सर्वशब्दवाच्य इति विशेषः। स्वभाव भेदस्तद-सङ्करश्च तत्र चात्र च तुल्यः । (श्रीभाष्य पृ० ११९-१२०)

भावानुवाद :

(१) कार्य में स्थित और कारण में स्थित स्थूल तथा सूक्ष्म चेतन तथा जड़ वस्तु ही जिसका शरीर है उसे परम पुरुष कहते हैं ।

(२) सूक्ष्म चेतन और जड़ जिसका शरीर है ऐसा कारण ब्रह्म है।

(३) ब्रह्म तथा चेतन और जड़ का संघात ही जगत् का उपादान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है । इसलिए उपादान होने पर भी ब्रह्म में विकार नहीं आता ।

(४) जैसे श्वेत, लाल और काले धागों के संघात से बना हुआ कपड़ा श्वेत, लाल और काला होता है । परन्तु सर्वत्र नहीं, इसी प्रकार चेतन, जड़ और ईश्वर के संघात से बने हुए जगत् की कार्यावस्था में भी भोक्ता, भोग और नियन्ता रहते हैं और उनमें संकरता नहीं आती।

(५) धागे तो अलग-अलग रह सकते हैं और जुलाहे की इच्छानुसार कारणस्थानीय धागे के रूप में या कार्यस्थानीय कपड़े के रूप में रहते हैं । परन्तु जगत् में चेतन और जड़ सब ब्रह्म का नित्य शरीर हैं और उसके प्रकार हैं । इसलिए चेतन और जड़ प्रकार विशिष्ट परमात्मा ही 'सब' शब्द से पुकारा जाता है ।

इनका तात्पर्य यह है कि स्थूल और सूक्ष्म अवस्थापन्न जगत् और जीव ब्रह्म के शरीर हैं । चित् और अचित् ही सूक्ष्म समष्टि हो स्थूल जगत् का उपादान है । इन दोनों चित् और अचित् से ब्रह्म में विकार नहीं होता क्योंकि नित्य व्यापक होने पर भी ब्रह्म सदा पृथक् है । जैसे काला, लाल और श्वेत धागे हर स्थान पर एक नहीं हो जाते। इसी प्रकार ब्रह्म, जीव और जड़ अलग-अलग रहते हैं ।

जिस प्रकार शांकर मत में ब्रह्म सत् और जगत् असत् है । उसी प्रकार रामानुज के मत में भी ब्रह्म सत् और जगत् असत् है परन्तु दोनों मतों की यह समानता यथार्थ नहीं क्योंकि असत् का जो अर्थ शंकर लेते हैं वह रामानुज नहीं लेते । शंकर का तात्पर्य 'असत्' से यह है कि जो वस्तु हो न परन्तु प्रतीत होती हो । जैसे स्वप्न का हाथी या रेगिस्तान का जल । परन्तु रामानुज के अनुकूल असत् का अर्थ है परिणामी अर्थात् तबदील होने वाला । शंकर जगत् को असत् इसलिए कहते हैं कि वह है नहीं किन्तु प्रतीत होता है । रामानुज जगत् को असत् इसलिए कहते हैं कि वह सदा बदलता रहता है । इस प्रकार यह दोनों मत केवल इसलिए एक नहीं हो सकते कि दोनों जगत् को असत् समझते हैं, क्योंकि उनके अर्थों में भेद है । समानता या असमानता अर्थों से ली जानी चाहिए । शब्दों से नहीं । देवदत्त कहता है कि **''नवकम्बलोऽहम्''** क्योंकि देवदत्त के पास नौ कम्बल हैं । यज्ञदत्त कहता है कि 'नवकम्बलोऽहम्' क्योंकि यज्ञदत्त के पास कम्बल तो एक ही है परन्तु नया है तो हम यज्ञदत्त और देवदत्त को समान नहीं कह सकते । इसलिए रामानुज और शंकर केवल इसलिए समान नहीं हो सकते कि वह जगत् को असत् मानते हैं क्योंकि 'असत्' के अर्थों में बड़ा भेद है ।

शंकर ब्रह्म को निर्गुण कहते हैं और गुण आदि का कारण माया को बताते हैं । रामानुज ब्रह्म को सगुण कहते हैं । वह चेतन जीव तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जड़ जगत् को एक अद्वितीय ब्रह्म का **'प्रकार'** मात्र बताते हैं। वह शंकर के समान ब्रह्म को केवल ज्ञान नहीं किन्तु ज्ञानी या ज्ञाता मानते हैं। वह कहते हैं कि एक ब्रह्म में कई गुण हो सकते हैं। ये गुण बिना आश्रय के स्वयं तो रह नहीं सकते। ब्रह्म ही उनका आधार है, यह संसार एक ब्रह्म द्वारा "नियम्य" अर्थात् नियमित है। रामानुज यह नहीं कहते कि जीव स्वतन्त्र ब्रह्म से अलग कोई सत्ता है। वह इनको ब्रह्म का **'प्रकार'** मात्र मानते हैं। रामानुज के मत में 'ब्रह्म' के दो अर्थ हैं। एक तो वह सत्ता जो अद्वितीय है और जड़ तथा चेतन जिसके प्रकट होने के प्रकार मात्र हैं दूसरे समस्त जगत्। जब कहते हैं कि ब्रह्म से इतर और कुछ नहीं तो वहां ब्रह्म से दूसरा अर्थात् 'जगत्' अर्थ लिया जाता है।

शंकर स्वामी जगत् को **विवर्त** मानते हैं। अर्थात् जगत् है नहीं किन्तु प्रतीत होता है। रामानुजाचार्य जगत् को **परिणामी** मानते हैं अर्थात् एक वस्तु बदल कर दूसरी वस्तु हो जाती है। दूध का दही बन जाना **परिणाम** है। रुई के टुकड़े का भ्रम से दही प्रतीत होना **विवर्त** है। शंकर भी सर्वथा परिणाम का निषेध नहीं करते। वह कहते हैं कि जब पहले विवर्त अर्थात् भ्रम से जगत् मान लिया गया तो उसके पश्चात् परिणाम का चक्र चल जाता है। इसको दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि पारमार्थिक अर्थ में जगत् उत्पन्न नहीं होता। केवल उसकी प्रतीति होती है परन्तु व्यावहारिक अर्थ में उसमें कार्य कारण आदि की शृंखला चल पड़ती है।

रामानुजाचार्य कहते हैं कि ब्रह्म जीव और जगत् में व्यापक तो है और उसमें जो कुछ परिणाम होते हैं वह ब्रह्म के नियन्त्रण में हैं परन्तु फिर भी ब्रह्म में उनके कारण कोई विकार नहीं आता।

ब्रह्म की दो अवस्थाएँ हैं एक तो **"प्रलय"** जब जीव तथा जड़ जगत् सुषुप्ति की सी अवस्था में रहते हैं। उस समय जड़ और चेतन में भेद नहीं कर सकते। उनका होना न होने के बराबर है **"सदेव सोम्य इदमग्रासीत्। एकमेवाद्वितीयम्"**। सत् ही था। वह एक अद्वितीय था। सृष्टि की इच्छा मात्र थी परन्तु वह इच्छा कार्य रूप में परिणत नहीं हुई थी। दूसरी अवस्था है सृष्टि की। शांकर मत में जगत् भ्रम मात्र है। विशिष्टाद्वैत मत में ब्रह्म अपनी इच्छा से उस नानात्व को प्रकट करता है जो अव्यक्त रूप में था। **"स ऐक्षत बहु स्याम् प्रजायेयेति"**। उपनिषत् कहती है। "उसने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं।"

उपनिषदों में जो "अन्तः प्रवेश" का वर्णन है उसके विषय में दोनों आचार्यों की भिन्न-भिन्न सम्मतियां हैं। शंकर के मत में 'अन्तःप्रवेश' शब्द केवल आलङ्कारिक अर्थ में है। उनका कहना है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि परिणामवाद की यह शब्दावली केवल समझाने के लिए है। बिना व्यावहारिक दशा से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों का प्रयोग किये हुए कुछ कहा ही नहीं जा सकता। इसलिए 'अन्त:प्रवेश' कह दिया। परन्तु रामानुज के मत में 'अन्त:प्रवेश' तो सृष्टि से पहले भी था। अर्थात् ईश्वर सब में व्यापक था! पुनर्वार कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि 'पहले अव्यक्त थी अब व्यक्त हो गई।

[३]

दयानन्द

स्वामी दयानन्द आधुनिक समय के सब से बड़े दार्शनिक हुए हैं। अभी उनकी गणना दार्शनिकों में नहीं है। क्योंकि आर्यसमाज का प्रवर्त्तक होने के कारण संसार उनको एक मत विशेष का प्रवर्त्तक समझता है। देशसुधार तथा समाजसुधार सम्बन्धी जो आन्दोलन वर्तमान काल में इस देश में हो रहे हैं उनमें स्वामी दयानन्द का इतना प्रबल भाग है कि मनुष्यों का ध्यान भी नहीं जाता कि वह समाज या देश-सुधारक के अतिरिक्त कुछ और भी थे। वैष्णव मत के नेता होने के कारण रामानुज का भी यही हाल हुआ। उनके दार्शनिक विचार उनके साम्प्रदायिक भावों के भीतर छिप गये। उनके अनुयायी उनको दार्शनिक की हैसियत से नहीं देखते और केवल वही उनके दार्शनिक विचारों पर ध्यान देते हैं जिनको दार्शनिक सिद्धान्तों के विकास से कुछ प्रेम है। अन्य तो केवल उनको भक्ति मार्ग का अग्रगन्ता समझते हैं। स्वामी दयानन्द के विषय में एक और विचित्र बात है। जिस प्रकार शंकर स्वामी और रामानुज स्वामी ने प्रस्थानत्रयी अर्थात् उपनिषद्, गीता तथा वेदान्त-दर्शन का भाष्य किया उस प्रकार स्वामी दयानन्द ने नहीं किया। वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, और शंकराचार्य और रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य सभी ने उपनिषद्, गीता तथा वेदान्त पर भाष्य किये। उस युग की यह प्रथा हो गई थी जब तक इन महान् ग्रन्थों का भाष्य न कर ले कोई आचार्य नहीं हो सकता था। और आचार्य पदवी को प्राप्त करने के लिए कोई ऐसा सिद्धान्त लेना चाहिए जिससे उस आचार्य की विशेषता भी हो जाय और वह सिद्धान्त इन तीनों ग्रन्थों द्वारा पुष्ट भी हो जाये।

स्वामी दयानन्द ने इस नीति का अवलम्बन नहीं किया। यद्यपि शंकर और रामानुज दोनों का उद्देश्य वेदस्थापन था परन्तु विचित्र और विचारणीय बात यह कि इन महानुभावों ने चारों वेदों को छुआ तक नहीं। समस्त शांकर भाष्यों में यत्र तत्र वेद मन्त्रों के कुछ संकेत मिल जाते हैं। अधिकतर तो उपनिषत् को ही श्रुति मानकर प्रतिपादन किया गया है। श्री रामानुजाचार्य के भाष्य में गीता और उपनिषत् के अतिरिक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक उच्च स्थान विष्णुपुराण को भी दिया गया है। वह बिना विष्णुपुराण के बात तक नहीं करते। स्वामी दयानन्द पुराणों को तो किसी गिनती में ही नहीं समझते। रही गीता उसे वह केवल महाभारत का एक अंग समझते हैं। इन सब से अधिक मान उनका उपनिषदों में है, परन्तु उपनिषदों को भी वह स्मृति अर्थात् परतः प्रमाण ही मानते हैं। उनके मत में उपनिषदें स्वतः प्रमाण नहीं। केवल मूल चार वेद अर्थात् ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ही स्वतः प्रमाण कहलाने योग्य हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार आश्चर्य नहीं यदि उन्होंने पहले उपनिषदों का भाष्य न करके सब से पहले ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया, और वह भी इसलिए नहीं कि उनको वेद का भाष्य करना था किन्तु इसलिए कि आधुनिक समय में वेद को समझने के साधन ही उठ चुके थे। उनका थोड़े ही दिनों पीछे शरीरान्त हो जाने के कारण यह कहा नहीं जा सकता कि उनकी पूरी स्कीम क्या थी। परन्तु उन्होंने **'ऋगादिभाष्य-भूमिका'** न लिखकर **'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका'** लिखी। इससे पता चलता है कि वेदों के उपरान्त अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी भाष्य करना उनको अभिमत था।

परन्तु उनके सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह बड़े अपूर्व दार्शनिक थे। उन्होंने बौद्धों अद्वैतवादियों तथा विशिष्टाद्वैतवादियों के विषय में अन्य प्रसंगों के भीतर जो टिप्पणियां दी हैं उनसे उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का भली भांति स्पष्टीकरण हो जाता है।

स्वामी दयानन्द न तो शंकर के समान अद्वैतवादी थे न रामानुज के समान विशिष्टाद्वैतवादी थे। वह थे पूरे द्वैतवादी या कहना चाहिए त्रैतवादी। वह तीन वस्तुओं का अलग और अनादि अस्तित्व स्वीकार करते हैं अर्थात् ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति का। उनके मत में तीनों सत् हैं। प्रकृति सत् है। जीव सत् और चित् है, ब्रह्म सत्, चित् तथा आनन्द भी है। वह शंकर के समान यह नहीं कहते कि **"एकं ब्रह्म, द्वितीयं किञ्चिद् वस्तु नास्ति"**। वह यह मानते हैं कि ब्रह्म एक ही है, दो नहीं। इस अंश में वह अद्वैतवादी हैं। परन्तु वह नहीं कहते कि केवल ब्रह्म ही है और कुछ है ही नहीं। वह यह नहीं कहते कि ब्रह्म ही मायावश जीव हो गया है यह जगत् केवल भ्रम मात्र या विवर्त ही है। उनको माया के मानने में वही आक्षेप है जो रामानुजाचार्य जी को है। परन्तु वह रामानुज के समान यह नहीं मानते कि जड़ तथा चेतन जगत् या जीव और प्रकृति ब्रह्म के ही 'प्रकार' मात्र हैं। जिस प्रकार रामानुज कहते हैं कि माया के मानने से शांकर अद्वैत खण्डित हो जाता है। उसी प्रकार स्वामी दयानन्द के मत में रामानुज का विशिष्ट अद्वैत भी अद्वैतवाद का खण्डन कर देता है। जब अद्वैत में विशिष्ट शब्द जुड़

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गया तो इसका अर्थ ही क्या हुआ ? विशेषता से क्या तात्पर्य है ? यदि एक ब्रह्म ही ब्रह्म है और कुछ नहीं तो न माया के लिए स्थान है न किसी अन्य विशेष के लिए। यदि ब्रह्म से इतर कोई विशेष है तो फिर द्वैत क्यों नहीं कहते। विशिष्टाद्वैत क्यों कहते हो ? फिर शुद्ध ज्ञान स्वरूप प्रकाशस्वरूप ब्रह्म के जड़ और चेतन दो प्रकार हो ही कैसे सकते हैं। रामानुज जीव का ब्रह्म के साथ एकत्व स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनको जीव के ब्रह्म से अलग लक्षण प्रतीत होते हैं। वह जीव को ब्रह्म से भिन्न मानते हैं यदि वस्तुतः जीव ब्रह्म से भिन्न है तो वह ब्रह्म का 'प्रकार' कैसे हुआ ?

शंकर ब्रह्म को ज्ञान मात्र मानते हैं, जिससे ज्ञाता और ज्ञेय का द्वन्द्व मिट जाये। रामानुज ब्रह्म को ज्ञाता भी मानते हैं। फिर क्या ज्ञाता के लिए अलग ज्ञेय नहीं चाहिए। दयानन्द कहते हैं कि यदि शंकर केवल ब्रह्म ही की सत्ता मान कर बिना माया के इस संसार की व्याख्या नहीं कर सकते और यदि रामानुज माया को न मानकर ब्रह्म की सत्ता में विशेषता मानने के लिए बाधित होते हैं तो यह दोनों सीधा-साधा द्वैत मत ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते ? माया के मानने में अनेक कठिनाइयां हैं जिसका न केवल रामानुज ने ही उल्लेख किया है किन्तु शांकर ग्रन्थों में भी पदे-पदे संकेत पाया जाता है। इन उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करने पर भी शंकर इस परीक्षा में कृतकार्य नहीं हुए, परन्तु रामानुज के विशिष्टाद्वैत में कठिनाइयां कुछ कम नहीं होतीं। जगत् के प्रपंच की व्याख्या करनी है, बहुत्व का कारण बताना है। विवर्त तो सर्वथा अनर्थक है। संसार में विवर्त के उदाहरण भी तो दो चार ही हैं। उन दो चार उदाहरणों से समस्त जगत् को विवर्त समझ लेना भूल है। परन्तु एक ब्रह्म से परिणामवाद के अनुसार भी जगत् नहीं बन सकता। सृष्टि से पहले क्या था ? केवल ब्रह्म या उससे इतर कुछ और ? रामानुज के मत में जीव और प्रकृति सुषुप्ति जैसी अवस्था में थे अर्थात् उनका आविर्भाव न था। जड़ और चेतन का भेद जाना नहीं जा सकता था। अब जरा इस विचार का विश्लेषण कीजिए। थोड़ी देर सोचिए कि ऐसा कहने से हमारा क्या तात्पर्य है ? यदि जीव सोते जैसे थे तो क्या हानि? थे तो ! यदि थे तो अद्वैतवाद कैसा ? यह तो सीधा द्वैतवाद हो गया। यदि **'एकोऽहं बहु स्याम्'** का अर्थ यह माना जाय कि ब्रह्म एक है, जीव कुछ नहीं। तो क्या जीवादि परिणाम द्वारा हो जायेंगे ? यदि कहो कि जीव आदि ब्रह्म में ही समाविष्ट हैं तो समाविष्ट का क्या अर्थ है? क्या जीव आदि उसी प्रकार ब्रह्म के साथ उपस्थित थे। जैसे सन्दूक में कितावें रहती हैं ? या उस प्रकार जैसे वट के बीज में वट का वृक्ष रहता है। कोई अर्थ लीजिए द्वैतवाद से पिण्ड नहीं छूटता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शंकर स्वामी पहले विवर्त मानकर फिर गुण परिणाम मानते हैं। अर्थात् ब्रह्म माया (या भ्रम) वश पहले तो अपने को जीव समझ लेता है । यह हुआ विवर्त ।

अतात्त्विकोऽन्यथाभावः विवर्त इति उदीरितः । 'अतात्त्विक अन्यथा भाव' का नाम है विवर्त । अर्थात् चीज जैसी न हो वैसी प्रतीत हो । जैसे रेत का जल मालूम पड़ना ।

तात्त्विकोऽन्यथाभावः परिणाम इति उच्यते । 'परिणाम नाम है तात्त्विकऽन्यथाभाव' का । अर्थात् चीज में वास्तविक तब्दीली आ जाय जैसे बर्फ या मिट्टी से घड़ा ।

स्वामी दयानन्द का कहना है कि संसार में उदाहरण तो विवर्त और गुण-परिणाम दोनों के मिलते हैं । अर्थात् जल में गुण परिणाम होकर भाप, बादल, वर्षा आदि होते हैं । और कभी-कभी विवर्त भी देखा जाता है । जैसे रस्सी सांप तो नहीं बनी परन्तु सांप जैसी मालूम पड़ने लगी । परन्तु यदि केवल ब्रह्म ही ब्रह्म की सत्ता मानी जाय और जीव और प्रकृति की नहीं तो न तो विवर्त से ही इस जगत् की व्याख्या कर सकते हैं न गुण-परिणाम से । यदि ब्रह्म ही है और वह ज्ञान स्वरूप है तो विवर्त या भ्रम होगा किसको । और यदि अनन्त एक रस ब्रह्म ही है अन्य कोई सत्ता नहीं तो ब्रह्म ही स्वयं बदल कर जगत् रूप कैसे बनेगा । दूध विकृत होकर दही बन जाता है । क्योंकि दूध न एक रस है, न अखण्ड है, न अपरिवर्तनशील है । मिट्टी से घड़े इसलिए बन जाते हैं कि मिट्टी एक रस अखण्ड और अपरिवर्तनशील नहीं । परन्तु ब्रह्म तो अखण्ड, एकरस और निर्विकार है । उसमें गुण-परिणाम हो भी कैसे सकता है ।

यह कहना कि पहले विवर्त होकर फिर गुण परिणाम होता है, दृष्टान्त-विरुद्ध और दार्शनिकता का गला घोंटने वाली चीज है । यह तो हो सकता है कि पहले गुण परिणाम हो और पीछे विवर्त । अर्थात् पहले दूध से दही बन जाये और दही को कोई मनुष्य भ्रम के कारण रुई समझ ले । परन्तु विवर्त को पहले मानकर फिर गुण-परिणाम मानना ठीक नहीं । अर्थात् पहले कोई मनुष्य रुई को भ्रम से दही समझ ले। फिर दही का मट्ठा, घी, रायता आदि बना सके । या दही को भ्रम से रुई समझ ले और फिर उस रुई का सूत कातकर कुर्त्ता, कोट, धोती आदि बना ले । जिस दही का मट्ठा, रायता आदि बन सकता है उसको कभी असत्य दही नहीं कहेंगे । उसको तो वास्तविक दही ही कहना पड़ेगा । शांकर मत के लोगों का जगत् में किसी अवस्था में भी गुण-परिणाम स्वीकार करना उनके विवर्त का खण्डन कर देता है और शंकर और रामानुज दोनों का गुण-परिणाम मानना द्वैत को सिद्ध कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देता है ।

रामानुज कहते हैं कि जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह सकती। स्वामी दयानन्द पूछते हैं कि इसका अर्थ क्या है ? क्या जीव उसी प्रकार ब्रह्म के आश्रय है जैसे गुण गुणी के आश्रित रहता है । या बालकपन, जवानी और बुढ़ापा मनुष्य के आश्रित रहते हैं ? थोड़े से विचार से ही पता लग जाता है कि जड़, चेतन जगत् का ब्रह्म से गुण गुणी का सम्बन्ध नहीं है । एक गुणी में कई गुण तो हो सकते हैं परन्तु वह परस्पर विरुद्ध न हों । एक ही समय में जड़ और चेतन दोनों प्रकार का जगत् दृष्टिगोचर होता है । मैं पत्थर पर बैठा हुआ हूं । मैं जीव हूं और पत्थर जड़ । ज्ञान की अपेक्षा से चेतन जीव और जड़ पत्थर दोनों में परस्पर विरोध है । या तो यह दो वस्तुएं हैं जिनमें एक दूसरे से विरुद्ध गुण हैं । जैसे एक ही रसोईघर में लोटे में ठंडा पानी हो और चूल्हे में आग या यदि एक ही ब्रह्म के दो प्रकार हैं तो एक ही समय में भिन्न क्यों हुए ? जब यह ब्रह्म के आश्रित हैं तो ब्रह्म ही के नियन्त्रण में हैं और इनकी अपनी अलग सत्ता भी नहीं तो इस भेद का कारण बताना पड़ेगा । ब्रह्म और जीव में भेद मानकर भी फिर जीव का अलग अस्तित्व न मानना समझ में नहीं आता । इससे तो शांकर मत ही अच्छा था कि उन्होंने न भेद माना न भेद की प्रतीति को ब्रह्म के कारण माना। स्वामी दयानन्द का कहना यह है कि चाहे तुम कितनी खींचातानी करो द्वैत या बहुत्व से छुटकारा मिल नहीं सकता । फिर अद्वैत शब्द तो उपनिषदों में भी मिलता है । विशिष्टाद्वैत का तो कहीं पता भी नहीं लगता । अद्वैत में कुछ भी विशेषता क्यों न करो वह सीधा द्वैत हो जाता है । यह कहना कि "**है तो ब्रह्म ही**" एक परन्तु उसमें बहुत्व के व्यक्त होने की शक्ति है। कुछ अधिक अर्थ नहीं रखता, जब तक यह न माना जाय कि बहुत्व अव्यक्त अवस्था में नित्य ही ब्रह्म में रहता है । और यदि व्यक्त मान लो तो अव्यक्त का अर्थ सोचना पड़ेगा । ऐसा कहने से क्या तात्पर्य है कि जड़ और चेतन अव्यक्त अवस्था में ब्रह्म में रहते हैं । अव्यक्त का अर्थ क्या है ? यदि कहो कि अव्यक्त का अर्थ यह है कि कोई उस भेद को जानने वाला नहीं तो प्रश्न यह है कि क्या ब्रह्म भी उस भेद को जानने से अनभिज्ञ है ? यदि ब्रह्म जानता है कि जड़ और चेतन भिन्न हैं परन्तु सुषुप्ति जैसी अवस्था में हैं और सिवाय मेरे कोई इस भेद को नहीं जानता, तब भी तो उनकी अलग सत्ता स्थापित हो गई । एक कमरे में छः बच्चे सो रहे हैं । माता जग रही है । बच्चों को पता नहीं कि हम छः हैं या एक हैं, या हैं भी या नहीं । क्योंकि सुषुप्ति में हैं । परन्तु माँ को तो पता है । इससे उनके अनेकत्व का खण्डन नहीं होता । यदि उसका ज्ञान यथार्थ है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तो वह अवश्य जानता होगा कि जड़ और चेतन यद्यपि अव्यक्त हैं तथापि भिन्न हैं । दूसरा कोई जान सके या न जान सके । शंकर स्वामी का ''अन्त:प्रवेश'' को आलङ्कारिक मानना साधारण सी बात है । जहां स्पष्ट द्वैतवाद हो और अद्वैत स्थापित करना चाहो, वहां आलङ्कारिक भाषा बता दो । परन्तु अलङ्कार के लिए भी तो नियम चाहिए ।

अब एक प्रश्न उठता है । वह है उपासना । उपासक तथा उपास्य के सम्बन्ध के सदाचार सम्बन्धी जीवन का सार भूत उपासना है । यदि ब्रह्म ही केवल निर्गुण, ज्ञान मात्र सत्ता है तो न उपासक कोई वस्तु है न उपासना का ही कुछ अर्थ है । हम यहां मार्च १९२६ के दो कलकत्ता रिव्यू (The Calcutta Review) से एक लेख उद्धृत करते हैं--

Morality cannot thrive in the absolute monism of Sankara . There can be no ethical life if Brahman is regarded as characterless unity. Morality demands that Brahman should be conceived as the Eternal Good-ness, who is the source of all our ideal. That the Good is supreme in heaven and earth, that the world is a moral order, is and ethical postulate. If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance. The moral "ought" does not apply to a self that is non-existent. Our will must be real, if ethics has a meaning. Moral consciousness tells us emphatically that we are as truly distinct from God, the source of our being , as we are from our fellow men.

भावानुवाद:

''शांकर अद्वैत में सदाचार को स्थान नहीं । यदि केवल ब्रह्म ही एक सत्ता है और वह भी निर्गुण, तो सदाचार के लिए आवश्यक है कि ब्रह्म में नित्य उत्कृष्टता मानी जाय जो हमारे सब आदर्शों का मूल हो सके । सदाचार का आधार इस नियम पर है कि अन्तरिक्ष और पृथ्वी में उत्कृष्टता सर्वोपरि है । और इस जगत् में सदाचार ओत-प्रोत है । यदि जीव का नित्य जीवत्व भ्रममात्र है तो कर्तव्य का भाव ही निरर्थक है । यदि जीव का अस्तित्व नहीं तो उसका ''कर्तव्य'' कैसा? यदि सदाचार का कुछ अर्थ है तो हमारी इच्छा शक्ति का वास्तविक अस्तित्व होना चाहिए । हमारे भीतर जो सदाचार सम्बन्धी भावना है वह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि हम वस्तुत: ईश्वर से (जो हमारे अस्तित्व का मूल है) उसी प्रकार भिन्न हैं जैसे अपने अन्य भाइयों से।''

शंकर स्वामी इस कठिनाई को समझते थे । उन्होंने अपनी आंखों से देखा था कि बौद्ध और जैन नास्तिकता के गड्ढे में गिर कर किस प्रकार अपने अत्यन्त प्रिय सदाचार की जड़ पर कुल्हाड़ा मार रहे हैं। महात्मा बुद्ध संसार को सदाचारी बनाना चाहते थे । वह स्वयं सदाचार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के पुंज थे और उनके भिक्षु सदाचार के आदर्श थे। परन्तु उनके दार्शनिक सिद्धान्त ऐसे न थे कि उन पर सदाचार की भित्ति खड़ी रह सकती। उन्होंने दीवार तो विशाल बनाई परन्तु रेत की। इसीलिए शंकर स्वामी ने उनका खण्डन करके आस्तिकता स्थापित की। परन्तु मायावाद ने शांकर प्रयत्न को भली भांति फली-भूत होने न दिया। स्वप्नवाद ने भारतवर्ष को सुला दिया। उपासना के लिए स्थान ही नहीं रहा। शंकर स्वामी ने इसका एक उपाय सोचा था। वह यह कि व्यावहारिक और पारमार्थिक दशा में भेद किया जाय। वह कहते हैं कि व्यवहार दशा में तो वह जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता ही है। ऐसी अवस्था में उपास्य और उपासक का भेद, पुण्य और पाप का भेद रहेगा ही। परन्तु वह उपचार क्षणिक है। वास्तविक नहीं। इससे रोग क्षण भर के लिए दब जाता है, जाता नहीं। हमने ऊपर जो अंग्रेजी का लेख दिया उसका आगे का भाग विचारणीय है :-

There is little sense is saying that questions of morality apply only to the lower world, but are transcended in the higher. If moral values are real, they are real at all times. Else they cease to have any significance. In short, morality demands permanent individual and a first Principle. The is the Good, the guiding star of all progress. But according to Sankara, individuality is an illusion occasioned by Avidya.

(p. 436-37)

''यह कहना निरर्थक है कि सदाचार का सम्बन्ध व्यवहार दशा से है परमार्थ से नहीं। यदि सदाचार का कुछ मूल्य है तो वह प्रत्येक समय के लिए है अन्यथा नहीं। सारांश यह है कि सदाचार के लिए आवश्यकता है कि नित्य जीव हों और एक सर्वोत्कृष्ट सत्ता हो जो सब उन्नति का आदर्श हो। परन्तु शांकर मत में जीव का जीवत्व अविद्या-जन्य भ्रम मात्र है।''

इस लेख के लेखक एक विद्वान् आर० रामानुजाचार्य हैं। उनका तात्पर्य यह है कि शांकर मत में सदाचार को स्थान नहीं, रामानुज के मत में है। परन्तु यह भी भूल है। विशिष्टाद्वैत भी सदाचार के लिए उचित स्थान नहीं छोड़ता। हमने जिन वाक्यों को वक्राक्षरों (italics) में कर दिया है उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। वह कहते हैं-

"moral consciousness tells us emphatically that we are as truly distinct from God, *the source of our being,* as we are from our fellow men."

अर्थात् सदाचार चाहता है कि ''हमारा ईश्वर से भिन्न अस्तित्व है।''

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसकी ऊपर के वाक्य से संगति मिलाइये ।

If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance.

अर्थात् यदि जीव का नित्य जीवत्व भ्रम है तो कर्तव्य का क्या अर्थ? इनसे दो बातें सिद्ध हुईं ।

(१) जीव ब्रह्म से भिन्न है

(२) जीव नित्य है ।

यदि यह दोनों बातें ठीक हैं तो उनका यह कहना कि

"The source of our being"

''ब्रह्म हमारी सत्ता का कारण है क्या अर्थ रखता है ? यदि जीव नित्य और भिन्न सत्ता है तो ब्रह्म उसका कारण कैसे हुआ ?

स्वामी दयानन्द इन उलझनों को इस प्रकार सुलझाते हैं कि जीव को न केवल ब्रह्म से **भिन्न** ही मानो किन्तु उसको **अकारण** भी मानो। जीव ब्रह्म के आश्रित इसलिए है कि नित्य जीव में नित्य ब्रह्म व्यापक है। व्यापक वस्तु व्याप्य का आधार तो है परन्तु कारण नहीं । केवल अकारण वस्तु ही नित्य हो सकती है । इस प्रकार विशिष्टाद्वैत ने शांकर अद्वैत की कठिनाइयों को सुलझाने का यत्न तो किया परन्तु वह उलझनें ज्यों की त्यों रह गईं । वस्तुत: स्वामी दयानन्द का द्वैत या त्रैतवाद ही उपास्य उपासक या सदाचार के प्रश्न को सुदृढ़ नींव प्रदान कर सकता है ।

शंकर कहते हैं कि ब्रह्म निर्गुण है । गुण माया के कारण प्रतीत होते हैं अत: माया का आवरण होने से ही सगुण ईश्वर होता है । पञ्चदशी में इसीलिए लिखा है कि–

मायाख्याया: कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ ।
यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि ॥

चित्रदीप प्रकरण, श्लोक ३६।

अर्थात् माया नामक कामधेनु के जीव और ईश्वर दोनों बछड़े ही हैं । वे इच्छा पूर्वक द्वैत का पान करते हैं । तत्त्व तो अद्वैत ही है।

ऐसे सगुण ब्रह्म के लिए जीव के समान ही माया का बछड़ा अर्थात् सगा भाई है । किसी जीव के हृदय में उपासक का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता । **हम उपासना उसी की करना चाहते हैं जो हमसे उत्कृष्ट और हमारे समान दोषों अथवा अल्पताओं से मुक्त हो । शांकर ईश्वर तो ऐसा नहीं । इसलिए व्यावहारिक दशा में उपासना नहीं बनती। परमार्थ में तो बनती ही नहीं, क्योंकि उपास्य ही उपास्य रह जाता है, उपासक नहीं । या यों कहना चाहिए कि जब उपासक नहीं, तो उपासना नहीं । क्योंकि उपासना उपासक के आधीन है और उपासना नहीं तो जो ब्रह्म रह गया वह भी उपास्य नहीं रहा।**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामानुज ब्रह्म के गुणों का निषेध नहीं करते । वह ब्रह्म में सभी गुणों का समावेश मानते हैं । जिस अंग्रेजी लेख का हमने ऊपर उल्लेख किया है उसी का एक उद्धरण लीजिये :

"Ramanuja secures the unity of the Universe without sacrificing its multiplicity. The all is one. The Supreme Spirit lies at the heart of "all the choir of heaven and furniture of the earth" and unifies them into an oredred whole. "All are but parts of one stupendous whole, whose body Nature is , and God the soul." Everything is embraced in the unity and harmony of a single system. Outside the sublime spirit of the Universe there is neither life nor being. The world is not an illusion, but it exists in Him. Matter and soul find their eternal abode in Him."

(p.439)

अर्थात् रामानुज विश्व की एकता को मानते हुए भी उसके बहुत्व का निषेध नहीं करते । सब एक ही है । समस्त द्यावापृथ्वी के भीतर एक परम आत्मा है जो सब को नियमानुसार सूत्रित करता है । सब एक महान् ब्रह्माण्ड के भाग हैं जिसका शरीर प्रकृति है और आत्मा ईश्वर है । समस्त वस्तुएं एक ही संस्था के अन्तर्गत हैं । विश्व के पवित्र-आत्मा के बाहर न जीवन है न सत्ता है । संसार माया नहीं है परन्तु ब्रह्म में रहता है, प्रकृति और जीव उसी में नित्य रहते हैं ।

एक और उद्धरण ।

This sublime spirit, the Essence of things is Purushottama. Ramanuja conceives him as endowed with every perfection. "He is a magnified and glorified replica of what is best and highest and most real in man. " God is not intelligence as Sankara would have it. According to Ramajuja, God is intelligent, merciful and righteous. To him belong the attributes, Truth and loving kindness. He is omnipotent. He is the source of all power. The individual soul has freedom to do what he likes. Only his freedom has certain limits.

(p.439)

"पवित्र-आत्मा जो सब वस्तुओं का तत्त्व है पुरुषोत्तम है । रामानुज के मतानुसार वह सभी गुणों से सम्पन्न है । मनुष्य में जो कुछ सर्वोत्कृष्ट उच्चतम और अत्यन्त तात्त्विक है उसका बृहत् और महान् रूप वह है । शंकर के समान रामानुज उसे ज्ञान नहीं मानते, उनके मत में ईश्वर चेतन दयालु, और श्रेष्ठ है सत् तथा दयालुता उसी के गुण हैं । वह सर्वशक्तिमान् है । वह सर्वशक्तियों का भण्डार है । जीव स्वतन्त्र है जो चाहे सो करे हां उसकी स्वतन्त्रता की कुछ मर्यादा अवश्य है।"

यदि ऊपर के इन दोनों उद्धरणों का विश्लेषण किया जाय तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामानुज के विशिष्टाद्वैत के लिए कोई स्थान नहीं रहता । अद्वैत को छोड़ते हुए भी रामानुज को 'अद्वैत' शब्द प्यारा है अतः वह उसको एक विशेषण (विशिष्ट) के साथ प्रयोग करते हैं । शांकर अद्वैत की धाक रामानुज के ऊपर है । वह उससे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु वस्तुतः वह शांकर मत के साथ अद्वैत को भी छोड़ बैठे । "Matter and soul find their eternal abode in Him." **''प्रकृति और जीव नित्य ही ब्रह्म में रहते हैं''** इसका क्या अर्थ है ? इसे विशिष्टाद्वैत कहें या सीधा द्वैत या त्रैत ! **''ईश्वर सर्वशक्तिमान् है ।''** ''जीव की शक्ति सीमित है ।'' इससे जीव का अभाव तो सिद्ध नहीं होता । स्वामी दयानन्द इन झमेलों से बचने के लिए अद्वैत को सर्वथा ही छोड़ देते हैं । वह ईश्वर में गुण तो मानते हैं परन्तु साथ ही उसे निर्गुण भी कहते हैं । निर्गुणता और सगुणता का अर्थ स्वामी दयानन्द वही नहीं लेते जो शंकर या रामानुज लेते हैं । **शंकर ने ब्रह्म को निर्गुण अर्थात् सब प्रकार के गुणों से रहित बताया । हां माया के कारण ईश्वर को सगुण माना । रामानुज ने ईश्वर में सभी गुण माने और उसे साकार भी बता दिया ।** यही रामानुज के अवतारवाद और सगुणोपासना की आधार-शिला है । दयानन्द इससे विपरीत जाते हैं । यह निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में तो भेद करते नहीं । उनके लिए ब्रह्म, ईश्वर, शिव, गणेश सभी भिन्न-भिन्न नाम उस एक सत्ता के हैं । **नाम अनेक हैं वस्तु एक है ।** इस अर्थ में आप दयानन्द को भी अद्वैतवादी कह सकते हैं क्योंकि वह एक ही ईश्वर मानते हैं अधिक ईश्वर नहीं । परन्तु स्वामी दयानन्द इस शब्द पर कुछ मोहित नहीं हैं । और न वह परवाह करते हैं कि कोई उनको द्वैतवादी कहे या अद्वैतवादी । उनके लिए ईश्वर की भिन्न-भिन्न अवस्थाएं भी नहीं जैसे एक निर्गुण अवस्था दूसरी सगुण अवस्था । वह वस्तुतः **निर्गुण और सगुण विशेषण** ईश्वर के साथ नहीं जोड़ते किन्तु उपासना के साथ जोड़ते हैं । यह कहते हैं कि ईश्वर में कुछ गुण हैं, कुछ नहीं । जैसे परमात्मा सर्वज्ञ है, दयालु है, न्यायकारी है। ये तो हुए उसके गुण परन्तु वह अल्प नहीं है, अशुद्ध नहीं हैं । इस प्रकार ईश्वर की सत्ता में अल्पता और अशुद्धता का अभाव हुआ। बस जो गुण ब्रह्म में हैं उनका अवलम्बन करने से उपासना सगुण हुई और जो गुण ब्रह्म में नहीं हैं उनको त्यागने के लिए उनका चिन्तन करना हुई निर्गुण उपासना । मोटे शब्दों में इसको यों कहेंगे कि ईश्वर दयालु है अतः हमको भी दयालु होना चाहिए । यह है सगुण उपासना ।

ईश्वर अशुद्ध नहीं है । अतः हमको भी अशुद्धता से बचना चाहिए । यह हुई निर्गुण उपासना।

इसकी पुष्टि में स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का आठवाँ मन्त्र दिया है जो उनके मत को भली भांति दर्शाता है :-

सपर्यगाच्छुक्रमकायमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूस्स्वयम्भूः । इत्यादि-

इस मन्त्र में कुछ ऐसे गुणों का वर्णन है जो ईश्वर में हैं और कुछ ऐसे गुणों का जो ईश्वर में नहीं हैं । अर्थात् **वह सर्वव्यापक है, शुक्र है, शुद्ध है, कवि है, मनीषी है, स्वयम्भू है** । यह तो हुए ईश्वर के गुण अब ईश्वर में कौन से गुण नहीं हैं । अकायम्, अस्नाविरम्, अपापविद्धम् । शरीर नहीं, नस, नाड़ी भी नहीं, पाप नहीं ।

सच्चा उपासक अपनी त्रुटियों को समझता हुआ ईश्वर की ओर बढ़ता है जिससे उसकी त्रुटियाँ कम हो जायें और ज्यों-ज्यों वह ईश्वर के समीप आता जाता है वह अपने को शुद्ध और पवित्र पाता है ।

●●

कुछ 'वैदिक ज्ञानधारा' के सम्बन्ध में

आर्य विद्वानों में इस विषय में दो मत नहीं हैं कि पं० लेखरामजी की स्मृति में निकाले गये 'आर्य मुसाफिर' उर्दू मासिक के लेखों का स्तर अत्यन्त ऊँचा था । इसके लेख साहित्यिक दृष्टि से भी ऊंचे होते थे, मौलिक होते थे, खोजपूर्ण होते थे और ठोस तथा रोचक होते थे। विधर्मी भी आर्य मुसाफिर को चाव से पढ़ते थे । यह पत्रिका पहले मासिक थी फिर साप्ताहिक भी निकलती रही । मैं आर्य मुसाफिर का यदा कदा पारायण करता रहता हूं ।

वर्षों से यह विचार मेरे मन में गुदगुदाता रहा कि 'आर्य मुसाफिर' के महत्त्वपूर्ण लेखों का हिन्दी अनुवाद करके इन्हें खण्डों में प्रकाशित किया जाये । इसमें विविधता का भी ध्यान रखा जाये । इससे कई लाभ होंगे । ऐसा करने से अनेक समर्पित पुण्य आत्माओं महात्माओं की स्मृति जीवित हो जायेगी और आर्यसमाज का ठोस साहित्य चिरस्थायी हो जायेगा । आर्य विद्वानों ने अपनी लेखनी व वाणी से युग की धारा को कैसे मोड़ा है, यह भी आज के पाठक जान सकेंगे ।

ऐसे सोचते हुए महर्षि दयानन्द व स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवनी लेखक आस्ट्रेलिया के प्रो० डॉ० जे० जार्डन्स से अपनी प्रथम भेंट की मुझे याद आ जाती थी । स्व० पं० चन्द्रभानु जी व पं० दुर्गादास जी शर्मा के साथ मैं आर्यसमाज हनुमान् रोड में उनसे वार्तालाप कर रहा था तो उन्होंने कहा, "क्या आपने कहीं 'आर्य मुसाफिर' का कोई अंक देखा है ?"

मैंने कहा, "हाँ ! आपको भी दिखा सकता हूँ ।"

उन्होंने कहा, "कितने अंक दिखा सकेंगे ।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैंने कहा, "मैं आपको सैकड़ों अंक दिखा सकता हूं ।"

यह सुनकर वह गद्गद हो गये वह इसके कई अंकों की फोटो करके ले गये । मैंने 'वैदिक ज्ञानधारा' के प्रथम खण्ड का कार्य आरम्भ किया तो आर्यसमाज के अन्यान्य उर्दू पत्रों के कुछ लेख अनूदित करने का लोभ संवरण न किया जा सका । कई अनूदित हो चुके लेख स्थान अभाव के कारण पुस्तक में नहीं दिये जा सके । साप्ताहिक 'प्रकाश' उर्दू व रिफार्मर के लेख भी ले लिये गये ।

पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिए कुछ अलभ्य उर्दू पुस्तकों, ट्रैक्टों आदि के कुछ मौलिक अंशों को भी चुनना पड़ा । एक शताब्दी पूर्व वैदिक मैगजीन में प्रकाशित स्वामी दर्शनानन्द जी के भी दो लेख अनूदित करके दिये गये । कुछ शास्त्रार्थ भी देने का पहले से ही विचार बना रखा था ।

गत दिनों एक सुयोग्य बन्धु ने कहा कि शास्त्रार्थ में विद्या ज्ञान व सैद्धान्तिक विशेषता की तो कोई बात नहीं होती केवल हाज़िर जवाबी का काम होता है । इस निराधार धारणा के निराकरण के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी के दो व पं॰ लेखराम जी का एक शास्त्रार्थ देकर इस पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाया गया । पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के तीन प्रवचनों का सार व कुछ हिन्दी लेखों को भी सम्मिलित कर लिया गया । अब तनिक इस पुस्तक का गहन परिचय करवाने के लिए इसके लेखों पर एक विहंगम दृष्टि डाली जाती है ।

'अमृतधारा' शीर्षक से स्वामी दर्शनानन्द लिखते हैं, परमात्मा का ज्ञान, "परमात्मा के दिये गये सद्ज्ञान वेद के द्वारा ही सम्भव है।" लेख संक्षिप्त है परन्तु पूरा लेख मन व मस्तिष्क को छूने वाला है। अगले लेख में प्रसिद्ध योगी स्व॰ पूज्य महात्मा हरिराम जी अध्यात्म-धारा में अपने प्रभु से कहते हैं, " मेरी कामनाओं को दुनिया के रस-भोगों की चाह, आपकी भक्ति को इनसे जन्म-जन्म की डाह है ।" कैसा रस भरा लेख है । यह शब्दों में नहीं बताया जा सकता ।

'आध्यात्मिकता' लेख में महात्मा नारायण स्वामी अध्यात्मिकता का प्रयोजन मनुष्य को उसकी भूलों से परिचित करवाना बताते हैं । कैसा अनूठा चिन्तन है । 'जीवन-निर्माण' विषय पर गम्भीर आर्य विद्वान् शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी महाराज का लेख पठनीय और विचारणीय है । यह लेख मनुष्य को आत्म-चिन्तन के लिए झकझोर कर रख देता है।

'प्रभु मिलन की राह' शीर्षक लेख श्रद्धेय पं॰ शान्तिप्रकाश जी की ज्ञान प्रसूता लेखनी से है । ठीक है कि वह कोई योगी नहीं थे परन्तु, इस अटल ईश्वर विश्वासी ने हंसते-हंसते कारागार के वे दिन बिता दिये जब उनके पाँव में भी बेड़ियाँ थीं और हाथों में हथकड़ियाँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लगी थीं। "यदि स्रष्टा और सृष्टि में कोई भेद नहीं तो जड़ता कहां से आई, जब कि परमात्मा चेतन है।" लेख के एक-एक पैरा में ऐसा गहन चिन्तन पाठकों को सत्य और असत्य का ज्ञान करवाता है।

'भक्ति करो, जन्म सुधारो' वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का एक भावपूर्ण उपदेश है। इसके आगे प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० दीवानचन्द जी का एक मौलिक रसीला लेख 'है देश हमारा दूर' बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। मैंने स्वयं इस लेख को बीसियों बार पढ़ा है। यह लेख प्यास को बुझाता है और जिज्ञासा को भड़काता है। खेद है कि लेखक ने इसको लिखते-लिखते लेखनी को क्यों रोक लिया?

'ईश्वर प्राप्ति' स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का उपदेश बारम्बार पढ़ने वाला है। इसका रस हम कैसे बतायें ? फिर वेदविद् स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ का 'ज्ञान-गंगा' लेख है। यह एक वेद मन्त्र की मौलिक व्याख्या है। आगे पीयूषवर्षी महात्मा आनन्द स्वामी जी का परम पुरुषार्थ की कामना लेख है।

वैदिक सन्ध्या पर आर्यसमाज के प्रसिद्ध योगी और मूर्धन्य वैदिक विद्वान् आचार्य भद्रसेन जी का अपने विषय का प्रथम लेख है। इसका प्रत्येक पैरा बड़ा मौलिक है। विचारोत्तेजक है। 'कुरान में वेदप्रकाश' आचार्य चमूपति जी का एक दुर्लभ लेख इस पुस्तक का आभूषण समझिये। मुझे गौरव है कि मुझे इस महान् मनीषी के साहित्य के प्रसार का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। 'ईश्वर की सत्ता' श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी के एक व्याख्यान का हिन्दी रूप है। यह कभी उर्दू पत्रों में छपा था। पठित युवकों को पढ़ाइये। अपनी सन्तान को आस्तिक बनाइये। यह गागर में सागर है। इतने थोड़े शब्दों में ईश्वर की सत्ता पर इतना ठोस ज्ञान कौन दे सकता है ?

पं० बिहारीलाल जी का वेद पर एक विचारणीय लेख दिया गया है। फिर श्री सन्तराम अजमानी का 'मूर्ति पूजा पर तीस प्रश्न' लेख है। ये प्रश्न आज भी उत्तर की खोज में हैं। जड़ पूजा के पाप को मिटाना है तो इस लेख का प्रचार कीजिये। मनुस्मृति में सन्ध्या को तो विधान है परन्तु मूर्तिपूजा का नहीं। कोई कारण बतायेगा ? 'वैदिक युग का साकार चित्रण' पं० शान्तिप्रकाश जी का एक प्रेरणाप्रद लेख है। आगे पं० लेखराम जी का प्रतिमा पूजन पर एक शास्त्रार्थ है फिर ईश्वर की सत्ता पर एक नास्तिक से महात्मा मुंशीराम जी का रोचक शास्त्रार्थ दिया है।

पं० लेखराम बलिदान शताब्दी के आगमन पर 'ऋषियों की महानता' आचार्य चमूपति जी के एक अलभ्य ट्रैक्ट का हिन्दी अनुवाद है जिसे मैं अपनी एक उपलब्धि मानता हूं। आगे स्वर्ग-नरक विषयक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उपाध्याय जी के एक ट्रैक्ट का अनुवाद दिया है । फिर देहलवी जी का एक व्याख्यान व स्वामी दर्शनानन्द जी का एक लेख है । ऐसे ही पं॰ बुद्धदेव जी, मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी, पं॰ जगदीशचन्द्र जी शास्त्री तथा पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय सरीखे महापुरुषों का एक-एक सैद्धान्तिक लेख है । आगे ऋषि दयानन्द जी पर पं॰ चमूपति जी तथा दो गैर आर्यसमाजियों (ऋषि के समकालीन थे) के लेख हैं । इनमें नई सामग्री मिलेगी । रामशरणम् वाले स्वामी सत्यानन्द जी का भी ऋषि पर एक लेख दिया गया है । हिन्दी के जाने माने लेखक श्री सन्तराम बी॰ ए॰ का स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की शूरता विषयक एक अत्यन्त प्रेरणाप्रद लेख दिया गया है । इतिहास प्रेमियों के लिए स्वामी ध्रुवानन्द जी का 'गुलबर्गा जेल' लेख दिया गया है । पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज एक महाबली ब्रह्मचारी थे । हवाई यात्रा के लिए यह नियम था कि बिस्तर आदि सहित यात्री का भार ढाई मन तक हो । हमारे स्वामी जी का बिना बिस्तर के ही पौने तीन मन भार था तो भी एक हवाई कम्पनी ने इस महाप्रतापी आर्य संन्यासी से विमान सेवा का उद्घाटन करवाया । पढ़िये इस यात्रा का रोचक वृत्तान्त ।

अन्तिम लेख मेरा ही है । इसका विषय 'महर्षि दयानन्द, पं॰ लेखराम व सर सैय्यद अहमद खाँ' है । महर्षि दयानन्द व पं॰ लेखराम के महान् व्यक्तित्व का परिचय देने वाले इस लेख में पर्याप्त नवीन व खोजपूर्ण सामग्री दी गई है ।

पं॰ लेखराम जी की बलिदान शताब्दी के कारण पं॰ शान्तिप्रकाश जी के ट्रैक्ट छः मार्च की रक्तिम होली का अनुवाद दिया गया है।

अन्ध-विश्वास की बाढ़ आ चुकी है । इस कारण पं॰ मनसाराम जी वैदिक तोप का भविष्य वाणियों व ज्योतिष पर एक रोचक व मार्मिक लेख दिया गया है । इसमें पृष्ठ १२७ पर पाठक ऋषि दयानन्द की बजाय 'स्वामी वेदानन्द जी' पढ़ें । प्रूफ की अशुद्धि के कारण ऐसा हो गया है । हमें इस मुद्रण दोष के लिए बड़ा खेद है । इतनी बड़ी पुस्तक में ऐसी एक आध भूल का रह जाना सम्भव ही है ।

आशा है कि हमारे माननीय विद्वान् और आर्य जनता हमारी इस कृति का, इस अनूठे प्रयास का उत्साहपूर्वक स्वागत करेंगे । यह हमारे प्रयास का आदि है । अन्त नहीं आगे भी प्रतीक्षा करें ।

–प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेद सदन, अबोहर--२५२११६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान्	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१८-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्त्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

MAHATMA ANAND SWAMI

Anand Gayatri Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life ?	30-00

महर्षि दयानन्द

व्यवहारभानु	४-००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१-५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१-५०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीतिदर्पण	६०-००
विदुरनीतिः (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह-पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२५-००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१२-००
ऋग्वेदशतकम्	१०-००
यजुर्वेदशतकम्	१०-००
सामवेदशतकम्	१०-००
अथर्ववेदशतकम्	१०-००
भक्ति संगीतशतकम्	६-००
चमत्कारी औषधियाँ	१५-००
घरेलू औषधियाँ	१५-००
चतुर्वेदशतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रभात-वन्दन	८-००
प्रार्थना-प्रकाश	८-००
शिवसंकल्प	८-००
प्रार्थनालोक (सजिल्द)	४०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-सौरभ	१२-००
सत्यार्थप्रकाश (सा०)	१२५-००
सत्यार्थप्रकाश (विशेष)	२००-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
सांख्यदर्शन भाष्य	१२५-००
योगदर्शन भाष्य	१००-००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
मीमांसादर्शन	३५०-००
सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
सांख्य सिद्धान्त	२००-००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	४०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	४०-००
वेद मीमांसा	५०-००
दीप्तिः	८०-००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	१८००-००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	१८-००
जीवात्मा	४०-००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	२५-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	१५०-००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खण्ड)	२४०-००
आर्य सूक्ति-सुधा	१२-००
वैदिक ज्ञान-धारा	८०-००

डा० भवानीलाल भारतीय

कल्याण मार्ग का पथिक	प्रेस में
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्डों में)	६६०-००
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	१५-००
श्याम जी कृष्ण वर्मा	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	२५-००
बिखरे मोती	४०-००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	१०-००
वैदिक धर्म	२५-००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	२०-००

ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनु० पं० घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित	२५०-००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका	१२५-००

पं० रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि	६०-००

आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल	५०-००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति-सुधा	४०-००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप	५०-००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य	२५-००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	४-००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम	३५-००
सन्ध्या विनय	६-००

पं० नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर	२५-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं॰ वा॰ विष्णुदयाल (मॉरीशस)

वेद भगवान् बोले १५-००

आ॰ उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल १०-००

पं॰ वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता ४५-००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध-कथाएँ १५-००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार गायत्रीशतकम् ३-००

पं॰ सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद् भगवद्गीता १५-००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका ४-००

पंचयज्ञप्रकाशिका ८-००

वैदिक सन्ध्या २-००

सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२-००

सन्ध्या-हवन दर्पण (उर्दू) ८-००

Vedic Prayer 3-00

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800-00

Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600-00

Geometry in Ancient India 350-00

Brahmgupta and His Works 350-00

God and His Divine Love 5-00

The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press

Speeches, Writings & Addresses

Vol. I : VINCITVERITAS 150-00

Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150-00

Vol. III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150-00

Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०-००

महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी) २५-००

बाल साहित्य

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द ५-००

गुरु विरजानन्द ४-५०

स्वामी श्रद्धानन्द ४-५०

धर्मवीर पं॰ लेखराम ५-००

मुनिवर पं॰ गुरुदत्त ५-००

स्वामी दर्शनानन्द ५-००

प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ४-५०

स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४-५०

महात्मा नारायण स्वामी ५-५०

देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५-५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा पच्चीसी ९-००

बाल शिक्षा २-५०

सुनील शर्मा

हमारे बालनायक ८-००

देश के दुलारे ९-००

हमारे कर्णधार ८-००

सत्यभूषण वेदालंकार एम॰ ए॰

नैतिक शिक्षा–प्रथम २-५०

नैतिक शिक्षा–द्वितीय ३-००

नैतिक शिक्षा–तृतीय ४-५०

नैतिक शिक्षा–चतुर्थ ५-००

नैतिक शिक्षा–पंचम ४-५०

नैतिक शिक्षा–षष्ठ ५-५०

नैतिक शिक्षा–सप्तम ५-५०

नैतिक शिक्षा–अष्टम ५-५०

नैतिक शिक्षा–नवम ८-००

नैतिक शिक्षा–दशम ८-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नीरू शर्मा	
आदर्श महिलाएँ	८-००
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	
वैदिक शिष्टाचार	३-००
पं॰ रामगोपाल विद्यालंकार	
दयानन्द चित्रावली	२५-००
ब्र॰ नन्दकिशोर	
आचार्य गौरव	५-००
डॉ॰ देवव्रत आचार्य	
योग शिक्षा—प्रथम	१२-००
योग शिक्षा—द्वितीय	१०-००
योग शिक्षा—तृतीय	१०-००
योग शिक्षा—चतुर्थ	१०-००
म॰ नारायण स्वामी	
प्राणायाम-विधि	२-००

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयां आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है ।

घर का वैद्य—प्याज	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००
घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५ रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)
घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)
घर का वैद्य (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)
घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)
घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)
घर का वैद्य—धूप-पानी ४०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्य प्रकाशन

डॉ॰ सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्यसमाज का इतिहास (भाग १)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग २)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ३)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ४)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ५)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ६)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ७)	३२५-००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	५६-००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८-००
पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	७७-००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	५८-००
प्राचीन भारत	६९-००
भारतीय संस्कृति का विकास	७७-००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	५६-००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	५८-००
एशिया का आधुनिक इतिहास	११०-००
यूरोप का इतिहास	१२०-००
समाजशास्त्र	८०-००
चाणक्य	६५-००
पतन और उत्थान	३५-००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	९०-००
भारत का इतिहास	११०-००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५-००
मध्यकालीन भारत	१३०-००
प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	३२५-००
Political Thought of Swami Dayanand	150-00

डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

एकादशोपनिषद्	१२५-००
उपनिषत् प्रकाश	११०-००
श्रीमद् भगवद्गीता	१०५-००
संस्कारचन्द्रिका	१२०-००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	९५-००
होमियोपैथिक चिकित्सा	१२५-००
होमियोपैथिक चित्रण	१२५-००
होमियोपैथी का क ख ग	१००-००
होमियोपैथी के मूल सिद्धान्त	८०-००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०-००
From old age to youth through Yoga	80-00
चतुर्वेद गंगालहरी	९५-००
मेरी नानी की कहानी	३५-००
मां और बच्चा	२५-००

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

अग्निहोत्र सर्वस्व	१०-००
उपहार सर्वस्व	५-००
मृत्युञ्जय सर्वस्व	१०-००
स्वाध्याय सर्वस्व	१२-००
उपनयन सर्वस्व	१०-००
दो पुटन के बीच	५-००
ए लविंग टोकन	५-००

महर्षि दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश	५०-००
संस्कारविधि	१०-००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	४०-००
उपदेशमञ्जरी	१०-००

पं॰ रामनाथ वेदालंकार

सामवेद (पूर्व॰, उत्तरार्ध)	४००-००
आर्ष ज्योति	५०-००
वेद मञ्जरी	५०-००
वैदिक नारी	४०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वामी योगेश्वरानन्द

बहिरंग योग	७०-००
आत्मविज्ञान	८०-००
ब्रह्मविज्ञान	१००-००
दिव्य ज्योति विज्ञान	४०-००
प्राण विज्ञान	३०-००
दिव्य शब्द ज्ञान	६०-००
निर्गुण ब्रह्म	३०-००
व्याख्यानमाला (५ भाग)	१५०-००
हिमालय का योगी -I	८०-००
हिमालय का योगी -II	७५-००
First Step to Higher Yoga	70-00
Science of Soul	80-00
Science of Divinity	100-00
Science of Divine Light	45-00
Science of Vital Force	40-00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40-00
Science of Divine Sound	40-00
Beads of Sermons	30-00
Himalaya Ka Yogi-I	80-00
Himalaya Ka Yogi-II	80-00

डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी

सुखी जीवन	१८-००
सुखी गृहस्थ	१२-५०
सुखी परिवार	१८-००
आचार शिक्षा	१०-००
नीति शिक्षा	१०-००
वेदों में नारी	२०-००
सुखी समाज	१८-००
वैदिक मनोविज्ञान	१८-००
यजुर्वेद सुभाषितावली	२५-००
सामवेद सुभाषितावली	२५-००
अथर्ववेद सुभाषितावली	३५-००
ऋग्वेद सुभाषितावली	४०-००
वेदों में आयुर्वेद	९०-००
Vedic Samdhya & Agnihotra	30-00
The Essence of the Vedas	200-00

चमूपति एम॰ ए॰

योगेश्वर कृष्ण	४०-००
वैदिक स्वर्ग	३०-००
वैदिक दर्शन	१५-००
अनादि तत्त्व	२५-००
विचार वाटिका (दो भाग)	१००-००

पं॰ भगवद्दत्त

सविता देवता	५९-००
बृहस्पति देवता	६०-००

पं॰ शिवकुमार शास्त्री

श्रुतिसौरभ	६०-००

आचार्य अभयदेव वेदालंकार

वैदिक विनय	१२५-००

स्वामी समर्पणानन्द

पञ्चयज्ञप्रकाश	१५-००
श्रीमद् भगवद्गीता	२०-००

पं॰ सुरेन्द्रकुमार

विशुद्ध मनुस्मृति	८०-००
मनुस्मृति	१५०-००

Svami Satya Prakash Sarasvati

Rigveda (13 vols)	2700-00
Athervaveda (4 vols)	900-00
Samveda (2 vols)	450-00
Yajurveda (1 vol)	225-00

स्वामी जगदीश्वरानन्द

देवर्षि दयानन्द चरित	२५-००
सामवेद भाष्य	१००-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

भूमिकाभास्कर (दो खण्ड)	३००-००
सत्यार्थभास्कर (दो खण्ड)	७००-००
संस्कारभास्कर	१५०-००
तत्त्वमसि	५०-००
आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता	६०-००
Ishopanishad	25-00
Brahmasutra	150-00
गौ की गुहार	१५-००
आर्य सिद्धान्तविमर्श	२०-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वीरेन्द्रसिंह परमार

जीवात्मा ४०-००

मैक्समूलर

भारत को विश्व की देन १३०-००

प्रो॰ रामविचार एम॰ ए॰

वेदसन्देश (दो खण्ड) १००-००

रमेश मुनि वानप्रस्थ

वैदिक यज्ञानुष्ठानविधि: ८०-००

डॉ॰ देवव्रत आचार्य

आसन प्राणायाम वैज्ञानिक विवेचन एवं चिकित्सा ४०-००

रामप्रकाश भसीन

मानव जीवन की सफलता के साधन २०-००

सुख सागर १५-००

पी॰ एन॰ ओक

आगरा का लालकिला हिन्दू भवन है ३५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–१ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–२ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–३ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–४ ४५-००

दिल्ली का लालकिला लालकोट था २५-००

ताजमहल मन्दिर भवन है ३५-००

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें ४५-००

कौन कहता है अकबर महान् था? ५०-००

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय ३०-००

वीर सावरकर साहित्य

१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर ११०-००

मेरा आजीवन कारावास ९५-००

कालापानी ३५-००

मोपला (उपन्यास) ऐतिहासिक १६-००

गोमान्तक (उपन्यास) ऐतिहासिक १६-००

हिन्दुत्व (नया संस्करण) १५-००

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आर्यसमाज सिद्धान्त और प्रगति ४०-००

आर्यसमाज संघर्ष और समस्याएँ ३५-००

A critical study of Philosophy of Dayanand 50-00

डॉ॰ भवानीलाल भारतीय

नवजागरण के पुरोधा: दयानन्द ६०-००

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी २०-००

डॉ॰ ओमप्रकाश वेदालंकार

मृत्यु से अमृत की ओर १३-००

आर्यों का परम धर्म ७-००

डी॰ ए॰ वी॰ प्रकाशन

महर्षि दयानन्द और उनके अनुवर्ती ५०-००

सूक्तियाँ (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी) ४०-००

प्रेरक प्रवचन (महात्मा हंसराज) ३५-००

क्रान्तिकारी भाई परमानन्द ५०-००

Swami Dayanand 35-00

Story of My Life (Lajpat Rai) 50-00

Mahatma Hansraj 35-00

Rishi Dayanand Saraswati 30-00

Reminiscences and Reflections of a Vedic Scholar (Prof. Satyavrat) 60-00

The Arya Samaj (Lajpat Rai) 50-00

Wisdom of Vedas 35-00

Swami Dayanand through Non Arya Samajist Eyes 75-00

Chips from a Vedic Workshop 80-00

आयुर्वेद-स्वास्थ्य

आयुर्वेद नवनीत ६५-००

आयुर्वेद चिकित्सा सार ३०-००

भोजन द्वारा चिकित्सा ४०-००

शाकाहारी व्यंजन विधियाँ ५०-००

अनुभूत चिकित्सा योग ३०-००

ब्र॰ नन्दकिशोर

मातृ गौरव ५-००

सत्संग गौरव ६-००

पितृ गौरव ८-००

विजय बिहारीलाल माथुर

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या (हिन्दी) १५-००

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या (अंग्रेजी) १५-००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यार्थप्रकाश

[आधुनिक हिन्दी रूपान्तर]

रूपान्तरकार : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

स्वामी जी ने इस ग्रन्थ के प्रत्येक वाक्य को समझने का प्रयत्न किया है। इस में जो छापे की अशुद्धियां रह गयी थीं, प्रूफ व संशोधकों की असावधानी से कोई शब्द छूट गया था, इस प्रकार की सभी अशुद्धियों को ठीक कर दिया गया है।

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त यह संस्करण है। पाठक पढ़कर भाव-विभोर हो उठेंगे।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्रों-सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए उपयोगी संस्करण।

साधारण मूल्य : १२५.०० रुपये
डीलक्स मूल्य : २००.०० रुपये

महर्षि दयानन्दचरित

लेखक : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

श्री देवेन्द्रनाथ जी द्वारा लिखित यह अनूठा जीवन-चरित है। उन्होंने १५ वर्ष तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके जहां-जहां ऋषि गये थे, वहां-वहां जाकर, जिन-जिन लोगों से मुनि मिले थे उन-उनसे मिलकर, उनके जीवन की सामग्री एवं घटनाओं का संकलन किया था। इस प्रकार यह प्रामाणिक और खोज-पूर्ण संस्करण है।

मूल्य : २५०.०० रु०

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नये प्रकाशन

दीप्ति—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। अनेक विषय हैं जिन पर आर्यसमाज में विभिन्न स्तरों पर समय-समय पर विचार होता आया है, परन्तु वे आज तक विवादास्पद बने हुए हैं। लेखक ने उन्हें गम्भीरतापूर्वक विचार कर निर्णय के तट पर पहुंचाने का प्रयास किया है। मूल्य ८०-०० रु०

वैदिक ज्ञानधारा—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। आर्यसमाज के कई दिवंगत महात्माओं, हुतात्माओं, विचारकों, नेताओं व उपदेशकों के महत्त्वपूर्ण लेखों, भाषणों, शास्त्रार्थों व प्रवचनों का संकलन। मूल्य ८०-०० रु०

बिखरे मोती—डा० भवानीलाल भारतीय। आर्य महापुरुषों के रोचक, शिक्षाप्रद संस्मरणों, शास्त्रार्थों की नोक-झोंक, आर्यों के आदर्श चरित्र को प्रख्यापित करने वाले जीवन प्रसंगों, साहित्यकारों की हास्यपूर्ण उक्तियों तथा उपदेशकों की हाजिर जवाबी को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ४०-०० रु०

आर्य सूक्ति-सुधा—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। महर्षि दयानन्द जी महाराज से लेकर शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्तिप्रकाश जी व श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक तक अधिक से अधिक शीर्षस्थ वैदिक विद्वानों की सूक्तियों का संग्रह, समुद्रमन्थन जैसा प्रयास है। मूल्य १२-०० रु०

सत्यार्थप्रकाश (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर)—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती। आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त। अपने स्वाध्याय के लिए अपने मित्रों-सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए उपयोगी संस्करण। मूल्य १२५-०० रु०

योग-शिक्षा (चार भागों में)—डा० देवव्रत आचार्य। योग का अभ्यास प्रत्येक बालक व बालिका को अनिवार्य रूप से करना चाहिए। यह पुस्तकें कक्षा सप्तम से दशम तक के छात्र-छात्राओं को शारीरिक अवस्था और मानसिक परिस्थिति के अनुसार उन्हें योग-शिक्षा का मार्गदर्शन करेंगी। विद्यार्थियों के लिए दिनचर्या, स्वस्थवृत्त, प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार-साधना, आसन क्रिया एवं स्वाध्याय का समन्वित पाठ्यक्रम बनाया है। जिसमें उनका स्वास्थ्य समुन्नत, मन एकान्त, बुद्धि कुशाग्र और मानवीय गुणों का उद्भव होगा। मूल्य प्रथम भाग १२-०० रु०
अन्य तीन भाग प्रत्येक १०-०० रु०

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi